

अध्याय-३१



मुक्ति-दान :

(१) संन्यासी विजयानंद (२)
बालाराम मानकर (३) नूलकर (४)
मेघा (५) बाघ की मुक्ति।

इस अध्याय में हेमाडपंत बाबा के सामने कुछ भक्तों की मृत्यु तथा बाघ के प्राण-त्याग की कथा का वर्णन करते हैं।

प्रारम्भ

मृत्यु के समय जो अंतिम इच्छा या भावना होती है, वही भवितव्यता का निर्माण करती है। श्रीकृष्ण ने गीता (अध्याय ८) में कहा है कि जो अपने जीवन के अंतिम क्षण में मुझे स्मरण करता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है तथा उस समय वह जो कुछ भी दृश्य देखता है, उसी को अन्त में पाता है। यह कोई भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकता कि उस क्षण हम केवल उत्तम विचार ही कर सकेंगे। जहाँ तक अनुभव में आया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अनेक कारणों से भयभीत होने की संभावना रहती है। इसके अनेक कारण हैं। इसलिये मन को इच्छानुसार किसी उत्तम विचार के चिंतन में ही लगाने के लिए नित्याभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण सभी संतों ने हरिस्मरण और जाप को ही श्रेष्ठ बताया है, ताकि मृत्यु के समय हम किसी घरेलू उलझन में न पड़ जाँ। अतः ऐसे अवसर पर भक्तगण पूर्णतः सन्तों के शरणागत हो जाते हैं, ताकि संत, जो कि सर्वज्ञ हैं, उचित पथप्रदर्शन कर हमारी यथेष्ट सहायता करें। इसी प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) विजयानन्द

एक मद्रासी संन्यासी विजयानंद मानसरोवर की यात्रा करने निकले। मार्ग में वे बाबा की कीर्ति सुनकर शिरडी आए, जहाँ उनकी भेंट हरिद्वार के सोमदेव जी स्वामी से हुई और इनसे उन्होंने मानसरोवर की

यात्रा के सम्बन्ध में पूछताछ की। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि मानसरोवर गंगोत्री से ५०० मील उत्तर की ओर है तथा मार्ग में जो कष्ट होते हैं, उनका भी उल्लेख किया, जैसे कि बर्फ की अधिकता, ५० कोस तक भाषा में भिन्नता तथा भूटानवासियों के संशयी स्वभाव, जो यात्रियों को अधिक कष्ट पहुँचाया करते हैं। ये सब सुनकर संन्यासी का चित्त उदास हो गया और उसने यात्रा करने का विचार त्यागकर मस्जिद में जाकर बाबा के श्री चरणों का स्पर्श किया। बाबा क्रोधित होकर कहने लगे - “इस निकम्मे संन्यासी को निकालो यहाँ से। इसका संग करना व्यर्थ है।” संन्यासी बाबा के स्वभाव से पूर्ण अपरिचित था। उसे बड़ी निराशा हुई, परन्तु वहाँ जो कुछ भी गतिविधियाँ चल रही थीं, उन्हें वह बैठे-बैठे ही देखता रहा। प्रातःकाल का दरबार लोगों से ठसाठस भरा हुआ था और बाबा को यथाविधि अभिषेक कराया जा रहा था। कोई पाद-प्रक्षालन कर रहा था तो कोई चरणों को छूकर तथा कोई तीर्थस्पर्श से अपने नेत्र तृप्त कर रहा था। कुछ लोग उन्हें चन्दन का लेप लगा रहे थे तो कोई उनके शरीर में इत्र ही मल रहा था। जातिपाँति का भेदभाव भुलाकर सब भक्त यह कार्य कर रहे थे। यद्यपि बाबा उसपर क्रोधित हो गए थे तो भी संन्यासी के हृदय में उनके प्रति बड़ा प्रेम उत्पन्न हो गया था। उसे यह स्थान छोड़ने की इच्छा ही न होती थी। दो दिन के पश्चात् ही मद्रास से पत्र आया कि उसकी माँ की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है, जिसे पढ़कर उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपनी माँ के दर्शन की इच्छा करने लगा, परन्तु बाबा की आज्ञा के बिना वह शिरडी से जा ही कैसे सकता था? इसलिये वह हाथ में पत्र लेकर उनके समीप गया और उनसे घर लौटने की अनुमति माँगी। त्रिकालदर्शी बाबा को तो सबका भविष्य विदित ही था। उन्होंने कहा कि “जब तुम्हें अपनी माँ से इतना मोह था तो फिर संन्यास धारण करने का कष्ट ही क्यों उठाया? ममता या मोह भगुवा वस्त्रधारियों को क्या शोभा देता है? जाओ, चुपचाप अपने स्थान पर रहकर कुछ दिन शांतिपूर्वक बिताओ। परन्तु सावधान! वाड़े में चोर अधिक हैं। इसलिए द्वार बंद कर सावधानी से रहना, नहीं तो चोर सब कुछ चुराकर ले जाएँगे। ‘लक्ष्मी’ यानी संपत्ति चंचला है और यह शरीर

भी नाशवान् है, ऐसा ही समझ कर इहलौकिक व पारलौकिक समस्त पदार्थों का मोह त्याग कर अपना कर्तव्य करो। जो इस प्रकार का आचरण कर श्रीहरि के शरणागत हो जाता है, उसका सब कष्टों से शीघ्र छुटकारा हो उसे परमानंद की प्राप्ति हो जाती है। **जो परमात्मा का ध्यान व चिंतन प्रेम और भक्तिपूर्वक करता है, परमात्मा भी उसकी अविलम्ब सहायता करते हैं।** पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारों के फलस्वरूप ही तुम यहाँ पहुँचे हो और अब जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और अपने जीवन के अंतिम ध्येय पर विचार करो। इच्छारहित होकर कल से भागवत का तीन सप्ताह तक पठन-पाठन प्रारम्भ करो। तब भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारे सब दुःख दूर कर देंगे। माया का आवरण दूर होकर तुम्हें शांति प्राप्त होगी।” बाबा ने उसका अंतकाल समीप देखकर उसे यह उपचार बता दिया और साथ ही ‘रामविजय’ पढ़ने की भी आज्ञा दी, जिससे यमराज अधिक प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन स्नानादि तथा अन्य शुद्धि के कृत्य कर उसने लेंडी बाग के एकांत में बैठकर भागवत का पाठ प्रारम्भ कर दिया। दूसरी बार पठन समाप्त होने पर वह बहुत थक गया और वाड़े में आकर दो दिन ठहरा, तीसरे दिन बड़े बाबा की गोद में उसके प्राण पखेरू उड़ गए। बाबा ने दर्शनों के निमित्त एक दिन के लिए उसका शरीर सँभाल कर रखने के लिये कहा। तत्पश्चात् पुलिस आई और यथोचित जाँच-पड़ताल करने के उपरांत मृत शरीर को उठाने की आज्ञा दे दी। धार्मिक कृत्यों के साथ उसकी उपयुक्त स्थान पर समाधि बना दी गई। बाबा ने इस प्रकार संन्यासी की सहायता कर उसे सद्गति प्रदान की।

(२) बालाराम मानकर

बालाराम मानकर नामक एक गृहस्थ बाबा के परम भक्त थे। जब उनकी पत्नी का देहांत हुआ तो वे बड़े निराश हो गए और सब घरबार अपने लड़के को सौंप वे शिरडी में आकर बाबा के पास रहने लगे। उनकी भक्ति देखकर बाबा उनके जीवन की गति परिवर्तित कर देना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उन्हें बारह रुपये देकर मच्छिंद्रगढ़ (जिला सातारा) में जाकर रहने को कहा। मानकर की इच्छा उनका सान्निध्य छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की न थी, परन्तु बाबा ने उन्हें समझाया

कि, “तुम्हारे कल्याणार्थ ही मैं यह उत्तम उपाय तुम्हें बतला रहा हूँ। इसलिये वहाँ जाकर दिन में तीन बार प्रभु का ध्यान करो।” बाबा के शब्दों में विश्वास कर वह मच्छिंद्रगढ़ चला गया और वहाँ के मनोहर दृश्यों, शीतल जल तथा उत्तम पवन और समीपस्थ दृश्यों को देखकर उसके चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा द्वारा बतलाई विधि से उसने प्रभु का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ दिनों के पश्चात् ही उसे दर्शन प्राप्त हो गया। बहुधा भक्तों को समाधि या तुरीयावस्था में ही दर्शन होते हैं, परन्तु मानकर जब तुरीयावस्था से प्राकृतावस्था में आया, तभी उसे दर्शन हुए। दर्शन होने के पश्चात् मानकर ने बाबा से अपने को वहाँ भेजने का कारण पूछा। बाबा ने कहा कि, “शिरडी में तुम्हारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे थे। इसी कारण मैंने तुम्हें वहाँ भेजा कि तुम्हारे चंचल मन को शांति प्राप्त हो। तुम्हारी धारणा थी कि मैं शिरडी में ही विद्यमान हूँ और साढ़ेतीन हाथ के इस पंचतत्व के पुतले के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ, परन्तु अब तुम मुझे देखकर यह धारणा बना लो कि जो तुम्हारे सामने शिरडी में उपस्थित है और जिसके तुमने दर्शन किये, वह दोनों अभिन्न हैं या नहीं। मानकर वह स्थान छोड़कर अपने निवास स्थान बाँद्रा को रवाना हो गया। वह पूना से दादर रेल द्वारा जाना चाहता था। परन्तु जब वह टिकट-घर पर पहुँचा तो वहाँ अधिक भीड़ के कारण वह टिकट खरीद न सका। इतने में ही एक देहाती, जिसके कंधे पर एक कम्बल पड़ा था तथा शरीर पर केवल एक लंगोटी के अतिरिक्त कुछ न था, वहाँ आया और मानकर से पूछने लगा कि, “आप कहाँ जा रहे हैं?” मानकर ने उत्तर दिया कि, “मैं दादर जा रहा हूँ।” तब वह कहने लगा कि, “मेरा यह दादर का टिकट आप ले लीजिये, क्योंकि मुझे यहाँ एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मेरा जाना आज न हो सकेगा।” मानकर को टिकट पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपनी जेब से वे पैसे निकालने लगे। इतने में टिकट देने वाला आदमी भीड़ में कहीं अदृश्य हो गया। मानकर ने भीड़ में पर्याप्त छानबीन की, परन्तु सब व्यर्थ ही हुआ। जब तक गाड़ी नहीं छूटी, मानकर उसके लौटने की ही प्रतीक्षा करता रहा, परंतु वह अन्त तक न लौटा। इस प्रकार

मानकर को इस विचित्र रूप में द्वितीय बार दर्शन हुए। कुछ दिन अपने घर ठहरकर मानकर फिर शिरडी लौट आया और श्रीचरणों में ही अपने दिन व्यतीत करने लगा। अब वह सदैव बाबा के वचनों और आज्ञा का पालन करने लगा। अन्ततः उस भाग्यशाली ने बाबा के सम्मुख उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने प्राण त्यागे।

(३) तात्यासाहेब नूलकर

हेमाडपंत ने तात्यासाहेब नूलकर के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं लिखा है। केवल इतना ही लिखा है कि उनका देहांत शिरडी में हुआ था। 'साईलीला' पत्रिका में संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था - सन् १९०९ में जिस समय तात्यासाहेब पंढरपुर में उपन्यायाधीश थे, उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर भी वहाँ के मामलतदार थे। ये दोनों आपस में बहुधा मिला करते और प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप किया करते थे। तात्यासाहेब सन्तों में अविश्वास करते थे, जबकि नानासाहेब की सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धा थी। नानासाहेब ने उन्हें साईबाबा की लीलाएँ सुनाई और एक बार शिरडी जाकर बाबा का दर्शन-लाभ उठाने का आग्रह भी किया। वे दो शर्तों पर चलने को तैयार हुए :- (१) उन्हें ब्राह्मण रसोईया मिलना चाहिए (२) भेंट के लिए नागपुर से उत्तम संतरे होने चाहिए। शीघ्र ही ये दोनों शर्तें पूर्ण हो गईं। नानासाहेब के पास एक ब्राह्मण नौकरी के लिये आया, जिसे उन्होंने तात्यासाहेब के पास भिजवा दिया और एक संतरे का पार्सल भी आया, जिसपर भेजने वाले का कोई पता न लिखा था। उनकी दोनों शर्तें पूरी हो गई थी। इसलिए अब उन्हें शिरडी जाना ही पड़ा। पहले तो बाबा उनपर क्रोधित हुए, परन्तु जब धीरे-धीरे तात्यासाहेब को विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही ईश्वरावतार हैं तो वे बाबा से प्रभावित हो गए और फिर जीवनपर्यन्त वहीं रहे। जब उनका अन्तकाल समीप आया तो उन्हें पवित्र धार्मिक पाठ सुनाया गया और अंतिम क्षणों में उन्हें बाबा का पादतीर्थ भी दिया गया। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर बाबा बोल उठे - "अरे! तात्या तो आगे चला गया। अब उसका पुनः जन्म नहीं होगा।"

(४) मेघा

२८ वें अध्याय में मेघा की कथा का वर्णन किया जा चुका है। जब मेघा का देहांत हुआ तो सब ग्रामवासी उनकी अर्धी के साथ चले और बाबा भी उनके साथ सम्मिलित हुए तथा उन्होंने उसके मृत शरीर पर फूल बरसाये। दाह-संस्कार होने के पश्चात् बाबा की आँखों से आँसू गिरने लगे। एक साधारण मनुष्य के समान उनका भी हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। उसके शरीर को फूलों से ढँककर एक निकट सम्बन्धी के सदृश रोते-पीटते वे मस्जिद को लौटे। सद्गति प्रदान करते हुए अनेक संत देखने में आए हैं, परन्तु बाबा की महानता अद्वितीय ही है। यहाँ तक कि बाघ सरीखा एक हिंसक पशु भी अपनी रक्षा के लिए बाबा की शरण में आया, जिसका वृत्तान्त निम्नलिखित है -

(५) बाघ की मुक्ति

बाबा के समाधिस्थ होने के सात दिन पूर्व शिरडी में एक विचित्र घटना घटी। मस्जिद के सामने एक बैलगाड़ी आकर रुकी, जिस पर एक बाघ जंजीरों से बँधा हुआ था। उसका भयानक मुख गाड़ी के पीछे की ओर था। वह किसी अज्ञात पीड़ा या दर्द से दुःखी था। उसके पालक तीन दरवेश थे, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर उसका नित्य प्रदर्शन करते और इस प्रकार यथेष्ट द्रव्य संचय करते थे, और यही उनकी जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन था। उन्होंने उसकी चिकित्सा के सभी प्रयत्न किये, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हुआ। कहीं से बाबा की कीर्ति उनके कानों में पड़ गई और वे बाघ को लेकर साईं दरबार में आए। हाथों से जंजीरें पकड़कर उन्होंने बाघ को मस्जिद के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। वह स्वभावतः ही भयानक था, पर रुग्ण होने के कारण वह बेचैन था। लोग भय और आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगे। दरवेश अन्दर आए और बाबा को सब हाल बताकर उनकी आज्ञा लेकर वे बाघ को उनके सामने लाये। जैसे ही वह सीढ़ियों के समीप पहुँचा, वैसे ही बाबा के तेज पुंज स्वरूप का दर्शन कर एक बार पीछे हट गया और अपनी गर्दन नीचे झुका दी। जब दोनों की दृष्टि आपस में एक हुई तो बाघ सीढ़ी पर चढ़ गया और प्रेमपूर्ण दृष्टि से बाबा की ओर निहारने लगा। उसने अपनी पूँछ

हिलाकर तीन बार जमीन पर पटकी और फिर तत्क्षण ही अपने प्राण त्याग दिये। उसे मृत देखकर दरवेशी बड़े निराश और दुःखी हुई। तत्पश्चात् जब उन्हें बोध हुआ तो उन्होंने सोचा कि प्राणी रोगग्रस्त था ही और उसकी मृत्यु भी सन्निकट ही थी। चलो, उसके लिए अच्छा ही हुआ कि बाबा सरीखे महान् संत के चरणों में उसे सद्गति प्राप्त हो गई। वह दरवेशियों का ऋणी था और जब वह ऋण चुक गया तो वह स्वतंत्र हो गया और जीवन के अन्त में उसे साई चरणों में सद्गति प्राप्त हुई। **जब कोई प्राणी संतों के चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्राण त्याग दे तो उसकी मुक्ति हो जाती है। पूर्व जन्मों के शुभ संस्कारों के अभाव में ऐसा सुखद अंत होना कैसे संभव है?**

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥